The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 3 | March 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF: 5.6
Website: www.theacademic.in

भारतीय व्याकरण परम्परा में धात्वर्थ: पाणिनीय एवं अपाणिनीय मतों का तुलनात्मक अध्ययन

रोहित कुमार चौधरी
शोधार्थी, संस्कृत विभाग, मोनाड विवि, हापुड़, उत्तरप्रदेश
विनिता शर्मा
परवेक्षक, असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, मोनाड विवि, हापुड़, उत्तरप्रदेश

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.19543219

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 28-03-2026

Published: 10-04-2026

Keywords:

धातु, धात्वर्थ, पाणिनीय व्याकरण, अपाणिनीय परम्परा, अष्टाध्यायी, शब्दार्थ विज्ञान, संस्कृत व्याकरण

ABSTRACT

भारतीय व्याकरण परम्परा में धातु (धातवः) को शब्दनिर्माण और अर्थनिर्धारण का मूलाधार माना गया है। संस्कृत भाषा की संरचना में धातुओं का विशेष महत्व है, क्योंकि इन्हीं से विभिन्न प्रत्ययों और उपसर्गों के माध्यम से शब्दों की रचना तथा उनके अर्थों का विस्तार होता है। प्रस्तुत शोध-समीक्षा लेख का उद्देश्य भारतीय व्याकरण परम्परा में धात्वर्थ की अवधारणा का अध्ययन करते हुए पाणिनीय तथा अपाणिनीय मतों का तुलनात्मक विश्लेषण करना है। पाणिनीय परम्परा, विशेषतः अष्टाध्यायी, धातुओं के अर्थ को एक व्यवस्थित और नियमबद्ध व्याकरणिक प्रणाली के अंतर्गत व्याख्यायित करती है, जहाँ धातु, प्रत्यय तथा कारक-सिद्धान्त के माध्यम से शब्दार्थ का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है। इसके विपरीत अपाणिनीय परम्पराएँ—जैसे कात्यायन, पतञ्जलि, भर्तृहरि तथा अन्य व्याकरणविदों के मत—धात्वर्थ की व्याख्या में अधिक दार्शनिक और व्याख्यात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं, जिनमें सन्दर्भ, प्रयोग और अर्थ की बहुलता को विशेष महत्व दिया गया है। इस अध्ययन में दोनों परम्पराओं में धातु के अर्थ, उनकी अनेकार्थता, उपसर्ग-प्रयोग तथा रूपात्मक परिवर्तन के आधार पर अर्थ-विस्तार का विश्लेषण किया गया है। तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जहाँ पाणिनीय परम्परा व्याकरणिक संरचना की वैज्ञानिकता और नियमबद्धता पर बल देती है, वहीं अपाणिनीय परम्परा अर्थ की व्याख्यात्मक लचीलेपन और दार्शनिक गहराई को प्रमुखता प्रदान करती है। इस प्रकार यह अध्ययन भारतीय व्याकरणिक परम्परा में धात्वर्थ के व्यापक स्वरूप को स्पष्ट करता है।

1. प्रस्तावना

भारतीय भाषाशास्त्रीय परम्परा में संस्कृत व्याकरण का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट रहा है। प्राचीन भारत में भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन की जो सुदृढ़ परम्परा विकसित हुई, उसका सर्वोच्च रूप संस्कृत व्याकरण में दृष्टिगोचर होता है। इस परम्परा में शब्द, अर्थ और वाक्य के परस्पर सम्बन्ध का अत्यन्त सूक्ष्म एवं तर्कसंगत विश्लेषण किया गया है। विशेषतः धातु (धातवः) को संस्कृत भाषा की मूल इकाई के रूप में स्वीकार किया गया है, क्योंकि अधिकांश शब्दों की उत्पत्ति धातुओं से ही मानी जाती है। इसी कारण भारतीय व्याकरण परम्परा में धात्वर्थ अर्थात् धातु का मूल अर्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय माना गया है (कोम्पेला, 2019)। संस्कृत व्याकरण के इतिहास में पाणिनि का नाम अत्यन्त गौरवपूर्ण है। उनकी महान कृति अष्टाध्यायी संस्कृत भाषा के व्याकरणिक विश्लेषण का अत्यन्त वैज्ञानिक और व्यवस्थित रूप प्रस्तुत करती है (स्टाल, 2005)। पाणिनि ने अपने सूत्रों के माध्यम से भाषा के ध्वनि, रूप, वाक्य तथा अर्थ सम्बन्धी नियमों को अत्यन्त संक्षिप्त किन्तु प्रभावशाली ढंग से व्यवस्थित किया है। पाणिनीय व्याकरण में धातु को शब्दनिर्माण का मूल आधार माना गया है तथा धातुओं के अर्थ, उनके रूपान्तरण तथा उनके प्रयोग को अत्यन्त सूक्ष्म रूप से व्यवस्थित किया गया है। पाणिनि के धातुपाठ में धातुओं का संग्रह प्रस्तुत किया गया है, जिसमें प्रत्येक धातु के साथ उसका मूल अर्थ निर्दिष्ट किया गया है। इस प्रकार पाणिनीय परम्परा में धात्वर्थ की अवधारणा अत्यन्त व्यवस्थित एवं नियमबद्ध रूप में विकसित हुई है (बोडास, 2024)।

इसके अतिरिक्त संस्कृत व्याकरण की परम्परा केवल पाणिनीय प्रणाली तक सीमित नहीं है। भारतीय व्याकरण परम्परा में अनेक ऐसे व्याकरणकार भी हुए हैं जिन्होंने पाणिनि की परम्परा से भिन्न या पूरक दृष्टिकोण प्रस्तुत किए। इन विद्वानों के मतों को सामान्यतः अपाणिनीय या गैर-पाणिनीय परम्परा कहा जाता है। इस परम्परा में कात्यायन, पतञ्जलि, भर्तृहरि, सर्ववर्मन, चन्द्रगोमिन्, हेमचन्द्र आदि विद्वानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन विद्वानों ने पाणिनीय व्याकरण की व्याख्या, आलोचना तथा विस्तार करते हुए भाषा और अर्थ के सम्बन्ध को विभिन्न दार्शनिक दृष्टियों से स्पष्ट करने का प्रयास किया। अपाणिनीय परम्पराओं में धात्वर्थ की व्याख्या अपेक्षाकृत अधिक लचीली, संदर्भप्रधान तथा दार्शनिक आधारों से युक्त दिखाई देती है (राजपोपत, 2022)।

धातु और उसके अर्थ का अध्ययन केवल व्याकरणिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि यह भारतीय दार्शनिक परम्पराओं से भी गहरे रूप में सम्बद्ध है। मीमांसा, न्याय, व्याकरण तथा वेदान्त जैसे दार्शनिक मतों में शब्द और अर्थ के सम्बन्ध पर व्यापक विचार किया गया है। विशेषतः व्याकरण और मीमांसा परम्पराओं में यह विचार किया गया कि शब्द का अर्थ किस प्रकार प्रकट होता है, वाक्य में अर्थ का निर्माण कैसे होता है तथा धातु के मूल अर्थ से विभिन्न शब्दों का निर्माण किस प्रकार सम्भव होता है। इस प्रकार धात्वर्थ का अध्ययन केवल भाषाशास्त्रीय विषय न होकर दार्शनिक और सांस्कृतिक अध्ययन का भी महत्वपूर्ण आधार बन जाता है (कार्डोना, 2000)। पाणिनीय और अपाणिनीय परम्पराओं के मध्य धात्वर्थ के विषय में अनेक समानताएँ तथा भिन्नताएँ देखने को मिलती हैं। पाणिनीय प्रणाली में धातु और उसके अर्थ का निर्धारण मुख्यतः नियमों तथा सूत्रों के आधार पर किया गया है, जबकि अपाणिनीय प्रणालियों में धात्वर्थ के विश्लेषण में संदर्भ, प्रयोग तथा दार्शनिक विचारों को भी महत्त्व दिया गया है। इसी कारण दोनों परम्पराओं का तुलनात्मक अध्ययन संस्कृत व्याकरण की व्यापक समझ प्रदान करता है।

2. भारतीय व्याकरण परम्परा का स्वरूप

भारतीय भाषावैज्ञानिक चिन्तन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन, समृद्ध तथा व्यवस्थित रही है। संस्कृत भाषा के अध्ययन और संरक्षण के उद्देश्य से भारत में व्याकरण की जो परम्परा विकसित हुई, उसे सामान्यतः भारतीय व्याकरण परम्परा कहा जाता है। यह परम्परा केवल भाषिक संरचना के नियमों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें भाषा के दार्शनिक, सांस्कृतिक तथा ज्ञानमीमांसात्मक आयाम भी निहित हैं। भारतीय आचार्यों ने भाषा को केवल संप्रेषण का साधन न मानकर शब्द और अर्थ के गूढ़ सम्बन्ध का दार्शनिक अन्वेषण भी किया। इसी कारण भारतीय व्याकरण परम्परा को विश्व की सबसे प्राचीन और वैज्ञानिक भाषिक परम्पराओं में स्थान प्राप्त है (हौबेन, 2009)।

भारतीय व्याकरण परम्परा का मूल उद्देश्य संस्कृत भाषा की शुद्धता, संरचना और प्रयोग को व्यवस्थित करना था। वेदों के संरक्षण और उनके शुद्ध उच्चारण की आवश्यकता ने व्याकरण को अत्यधिक महत्व प्रदान किया। इसी कारण व्याकरण को वेदांगों में विशेष स्थान दिया गया। शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, कल्प और ज्योतिष—इन छह वेदांगों में व्याकरण को भाषा के स्वरूप को व्यवस्थित करने वाला प्रमुख अंग माना गया है। व्याकरण के माध्यम से शब्दों की रचना, उनके रूप, प्रयोग तथा अर्थ का वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया, जिससे भाषा के प्रयोग में शुद्धता और स्थिरता बनी रही (पिंगलाचार्य 2008)। भारतीय व्याकरण परम्परा में अनेक व्याकरणिक विद्यालयों का विकास हुआ, जिनमें पाणिनीय, कातन्त्र, चान्द्र, जैनेंद्र तथा शाकटायन आदि प्रमुख हैं। इन सभी परम्पराओं का मूल उद्देश्य संस्कृत भाषा की संरचना को स्पष्ट करना था, परन्तु उनकी कार्यप्रणाली और सिद्धान्तों में कुछ भिन्नताएँ भी दिखाई देती हैं। इन विभिन्न परम्पराओं के माध्यम से भारतीय भाषिक चिन्तन की विविधता तथा गहराई का परिचय मिलता है (शास्त्री, 1972)।

भारतीय व्याकरण परम्परा में पाणिनीय प्रणाली को सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली माना जाता है। महान व्याकरणाचार्य पाणिनि द्वारा रचित अष्टाध्यायी संस्कृत व्याकरण का मूल और आधारभूत ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ लगभग चार हजार सूत्रों में संस्कृत भाषा की संपूर्ण व्याकरणिक संरचना का अत्यन्त संक्षिप्त और वैज्ञानिक निरूपण प्रस्तुत करता है। पाणिनि की प्रणाली की विशेषता इसकी सूत्रात्मकता, संक्षिप्तता तथा तार्किकता है। इसमें धातु, प्रत्यय, उपसर्ग, समास और संधि आदि के नियमों के माध्यम से शब्द-निर्माण की एक सुव्यवस्थित प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। पाणिनीय व्याकरण की यह विशेषता इसे एक प्रकार की एल्गोरिथमिक प्रणाली बनाती है, जिसके द्वारा सीमित नियमों से अनन्त शब्दरूपों की रचना सम्भव होती है। पाणिनीय परम्परा के विकास में अनेक महान आचार्यों का योगदान रहा है। कात्यायन ने अपने वार्तिकों के माध्यम से पाणिनि के सूत्रों की व्याख्या और संशोधन किया, जबकि पतञ्जलि ने महाभाष्य में पाणिनीय व्याकरण की गहन विवेचना प्रस्तुत की। इस प्रकार पाणिनीय परम्परा केवल एक ग्रन्थ तक सीमित न रहकर एक विस्तृत व्याकरणिक परम्परा के रूप में विकसित हुई, जिसमें विभिन्न आचार्यों ने अपने-अपने योगदान से इसे समृद्ध किया (दास, 2012)।

पाणिनीय परम्परा के अतिरिक्त भारतीय व्याकरण में अपाणिनीय परम्पराएँ भी महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन परम्पराओं में कातन्त्र व्याकरण, चान्द्र व्याकरण, जैनेंद्र व्याकरण आदि प्रमुख हैं। कातन्त्र व्याकरण को विशेष रूप से सरल और शिक्षणोपयोगी माना गया है, क्योंकि इसमें पाणिनीय व्याकरण की जटिलताओं को सरल रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसी प्रकार चान्द्र व्याकरण में भी वैकल्पिक नियमों और सरल व्याख्याओं के माध्यम से संस्कृत व्याकरण को समझाने का प्रयास किया गया है। भारतीय व्याकरण परम्परा की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें भाषा और दर्शन का गहरा सम्बन्ध दिखाई

देता है। व्याकरण केवल शब्दों की संरचना का अध्ययन नहीं करता, बल्कि शब्द और अर्थ के सम्बन्ध की भी गहन पड़ताल करता है। इसी कारण भर्तृहरि जैसे दार्शनिक व्याकरणाचार्यों ने भाषा को दार्शनिक चिन्तन से जोड़ा और स्फोट सिद्धान्त जैसे विचार प्रस्तुत किए, जिनके अनुसार अर्थ का बोध शब्दों के समग्र रूप से होता है (शार्फ, 2011)।

इसके अतिरिक्त मीमांसा और न्याय जैसे दार्शनिक विद्यालयों ने भी भाषा और अर्थ के सम्बन्ध पर गहन विचार प्रस्तुत किया। मीमांसा दर्शन में शब्द और अर्थ के शाश्वत सम्बन्ध को स्वीकार किया गया, जबकि न्याय दर्शन ने भाषा के तर्कसंगत विश्लेषण पर बल दिया। इस प्रकार भारतीय व्याकरण परम्परा केवल भाषिक अध्ययन तक सीमित न रहकर दार्शनिक और सांस्कृतिक चिन्तन से भी गहराई से जुड़ी रही है।

3. धातु की संकल्पना एवं धातुपाठ की परम्परा

भारतीय व्याकरण परम्परा में धातु (धातवः) को भाषा की मूल इकाई माना गया है, जिसके आधार पर शब्दों तथा वाक्यों की रचना होती है। संस्कृत भाषा की रचनात्मकता का आधार ही धातु है, क्योंकि अधिकांश शब्द धातुओं से ही विभिन्न प्रत्ययों के योग द्वारा निर्मित होते हैं। इस कारण संस्कृत व्याकरण में धातु की संकल्पना अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाती है। परम्परागत रूप से धातु को उस मूल क्रियात्मक तत्व के रूप में समझा जाता है जो किसी क्रिया, भाव या अवस्था का बोध कराता है। व्याकरणशास्त्र में प्रसिद्ध परिभाषा है— “धातवः क्रियावाचकाः”, अर्थात् धातुएँ क्रिया का बोध कराने वाली होती हैं।

संस्कृत शब्दरचना की दृष्टि से धातु को आधार मानते हुए उस पर प्रत्यय (प्रत्ययाः), उपसर्ग (उपसर्गाः) तथा अन्य व्याकरणिक अवयवों के योग से विविध पदों का निर्माण किया जाता है। उदाहरणतः गम् धातु से गच्छति, गमनम्, आगमनम्, प्रगमनम् आदि अनेक शब्द बनते हैं। इस प्रकार धातु केवल क्रियापदों के निर्माण का आधार नहीं है, बल्कि संज्ञा, विशेषण और अन्य पदों की व्युत्पत्ति का भी मूल स्रोत है। यही कारण है कि संस्कृत व्याकरण में धातुओं का व्यवस्थित संकलन और वर्गीकरण अत्यन्त आवश्यक समझा गया (त्रिपाठी, 2018)।

धातुओं के इस व्यवस्थित संकलन को धातुपाठ कहा जाता है। धातुपाठ संस्कृत व्याकरण की एक महत्त्वपूर्ण परम्परा है जिसमें सभी धातुओं को उनके अर्थ तथा गण के अनुसार सूचीबद्ध किया गया है। पाणिनीय परम्परा में धातुपाठ का विशेष महत्व है, क्योंकि पाणिनि की अष्टाध्यायी में शब्दरचना के अधिकांश नियम धातुओं पर आधारित हैं। धातुपाठ में धातुओं को उनके प्रयोग तथा रूप-रचना के आधार पर विभिन्न गणों (धातुगणाः) में विभाजित किया गया है। परम्परागत रूप से दस प्रमुख धातुगण माने जाते हैं, जैसे— भ्वादिगण, अदादिगण, जुहोत्यादिगण, दिवादिगण, स्वादिगण, तुदादिगण, रुधादिगण, तनादिगण, क्र्यादिगण तथा चुरादिगण। इन गणों का वर्गीकरण धातुओं के रूपान्तरण और प्रयोग के नियमों को स्पष्ट करने में सहायक होता है।

धातुपाठ में प्रत्येक धातु के साथ उसका मूल अर्थ भी दिया जाता है, जिसे धात्वर्थ कहा जाता है। उदाहरण के लिए भू धातु का अर्थ “सत्ता या होना” है, जबकि कृ धातु का अर्थ “करना” या “निर्माण करना” है। इस प्रकार धातुपाठ केवल धातुओं की सूची ही नहीं है, बल्कि उनके अर्थ और प्रयोग की जानकारी भी प्रदान करता है। इससे संस्कृत भाषा की व्युत्पत्तिमूलक संरचना को समझने में अत्यन्त सहायता मिलती है। पाणिनीय परम्परा के अतिरिक्त अन्य व्याकरणिक परम्पराओं में भी धातुपाठ की अपनी-अपनी व्यवस्था मिलती है। अपाणिनीय परम्पराओं—जैसे कातन्त्र, चान्द्र तथा जैनेंद्र व्याकरण—में भी धातुओं का संकलन और

वर्गीकरण किया गया है, किन्तु उनकी पद्धति और व्यवस्था पाणिनीय प्रणाली से कुछ भिन्न है। कुछ परम्पराएँ धातुओं के अर्थ और प्रयोग पर अधिक बल देती हैं, जबकि कुछ में व्युत्पत्ति और रूप-परिवर्तन की प्रक्रिया पर विशेष ध्यान दिया गया है (शास्त्री, 2014)।

इस प्रकार धातु और धातुपाठ की परम्परा भारतीय व्याकरणशास्त्र की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता है। यह न केवल संस्कृत शब्दरचना की आधारभूत प्रणाली को स्पष्ट करती है, बल्कि भाषा के अर्थविज्ञान, व्युत्पत्ति और प्रयोग की गहन समझ भी प्रदान करती है। पाणिनीय और अपाणिनीय दोनों परम्पराओं में धातुओं के अध्ययन ने संस्कृत भाषा की वैज्ञानिकता और व्यवस्थित संरचना को स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इसलिए भारतीय व्याकरण परम्परा में धातु की संकल्पना तथा धातुपाठ की परम्परा को भाषा-विज्ञान के एक मूलभूत और अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार किया गया है।

4. पाणिनीय व्याकरण में धात्वर्थ की संकल्पना

भारतीय व्याकरण परम्परा में धातु को शब्दनिर्माण का मूलाधार माना गया है। पाणिनीय व्याकरण में धातुओं का विशेष महत्व है, क्योंकि संस्कृत भाषा के अधिकांश शब्द धातुओं से ही उत्पन्न होते हैं। महर्षि पाणिनि द्वारा रचित अष्टाध्यायी में धातु को क्रिया के मूल स्रोत के रूप में स्वीकार किया गया है तथा धातु के माध्यम से शब्द के अर्थ की व्युत्पत्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। पाणिनीय परम्परा में यह मान्यता है कि प्रत्येक धातु अपने भीतर एक मूल क्रियार्थ या धात्वर्थ को निहित रखती है, जो विभिन्न प्रत्ययों, उपसर्गों तथा रूपपरिवर्तनों के माध्यम से विविध शब्दों में व्यक्त होता है (भाटे, 1991)। पाणिनि की प्रणाली में धातुओं का संग्रह धातुपाठ के रूप में प्रस्तुत किया गया है। धातुपाठ में धातुओं को विभिन्न गणों में वर्गीकृत किया गया है, जैसे—भ्वादिगण, अदादिगण, जुहोत्यादिगण आदि। प्रत्येक धातु के साथ उसका मूल अर्थ दिया गया है, जिसे धात्वर्थ कहा जाता है। उदाहरणार्थ, गम् धातु का अर्थ 'गमन करना', स्था धातु का अर्थ 'स्थिर होना', तथा भू धातु का अर्थ 'होना या अस्तित्व में आना' माना गया है। यह मूल अर्थ ही आगे चलकर विभिन्न शब्दों और क्रियापदों की व्युत्पत्ति का आधार बनता है।

पाणिनीय व्याकरण की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें धात्वर्थ को केवल शब्दकोशीय अर्थ के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि इसे एक व्यवस्थित व्याकरणिक प्रक्रिया के माध्यम से समझाया गया है। धातु के साथ प्रत्ययों के योग से क्रियापद तथा संज्ञा रूपों की रचना होती है, जिससे अर्थ का विस्तार होता है। उदाहरण के लिए, कृ धातु का मूल अर्थ 'करना' है, किन्तु विभिन्न प्रत्ययों के प्रयोग से कर्ता, करण, कार्य, कर्म आदि अनेक शब्द बनते हैं। इस प्रकार धातु का मूल अर्थ अनेक रूपों में विकसित होकर व्यापक अर्थ क्षेत्र का निर्माण करता है। पाणिनीय परम्परा में धात्वर्थ की व्याख्या में कारक सिद्धान्त का भी महत्वपूर्ण स्थान है। कारक सिद्धान्त के अनुसार क्रिया से सम्बन्धित विभिन्न कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान आदि तत्वों के माध्यम से क्रिया का अर्थ स्पष्ट होता है। धातु से उत्पन्न क्रिया केवल एक साधारण क्रिया नहीं होती, बल्कि वह वाक्य में विभिन्न कारकों के साथ सम्बन्ध स्थापित करके पूर्ण अर्थ व्यक्त करती है। इस प्रकार धात्वर्थ वाक्य की अर्थ संरचना का मूल आधार बन जाता है (मुजफ्फर, 2016)।

इसके अतिरिक्त पाणिनीय व्याकरण में उपसर्गों का भी धात्वर्थ के विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान माना गया है। धातु के साथ उपसर्ग के जुड़ने से उसके अर्थ में परिवर्तन या विस्तार होता है। उदाहरण के लिए, गम् धातु के साथ प्र, सम्, नि आदि उपसर्गों के

प्रयोग से प्रगच्छति, संयच्छति, निगच्छति जैसे रूप बनते हैं, जिनमें मूल क्रिया के साथ विशेष अर्थ जुड़ जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि पाणिनीय व्याकरण में धात्वर्थ को एक गतिशील और विकसित होने वाली अवधारणा के रूप में देखा गया है। पाणिनीय व्याकरण की विशेषता यह भी है कि इसमें धातुओं के अर्थ को अत्यन्त संक्षिप्त किन्तु वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। अष्टाध्यायी के सूत्रों के माध्यम से धातुओं के प्रयोग, रूपान्तरण तथा अर्थ-विस्तार के नियम निर्धारित किए गए हैं। यही कारण है कि पाणिनीय प्रणाली को अत्यन्त व्यवस्थित और तर्कसंगत व्याकरणिक प्रणाली माना जाता है (चोम्स्की, 2014)।

5. अपाणिनीय व्याकरण में धात्वर्थ की व्याख्या

भारतीय व्याकरण परम्परा में धातु (धातवः) को भाषा की मूल इकाई माना गया है, क्योंकि समस्त शब्द-निर्माण का आधार धातु ही होती है। पाणिनीय परम्परा में धातुओं का स्वरूप अत्यन्त व्यवस्थित और सूत्रात्मक रूप में प्रतिपादित हुआ है, किन्तु इसके अतिरिक्त अनेक ऐसी व्याकरणिक परम्पराएँ भी विकसित हुईं जिन्हें सामान्यतः अपाणिनीय व्याकरण कहा जाता है। इन परम्पराओं में कातन्त्र, चान्द्र, जैनेंद्र, शाकटायन तथा भर्तृहरि आदि विद्वानों की व्याख्याएँ प्रमुख हैं। इन व्याकरणों में धात्वर्थ की व्याख्या अपेक्षाकृत अधिक लचीली, दार्शनिक तथा प्रयोगाधारित रूप में मिलती है (चोम्स्की, 1993)। अपाणिनीय व्याकरणों में धात्वर्थ का निर्धारण केवल व्युत्पत्तिगत नियमों पर आधारित नहीं होता, बल्कि भाषा के प्रयोग, प्रसंग और अर्थ-संबंधों को भी समान रूप से महत्त्व दिया जाता है। उदाहरणार्थ, शाकटायन परम्परा में यह मत व्यक्त किया गया है कि अधिकांश शब्द धातुओं से ही उत्पन्न होते हैं, अतः किसी शब्द के अर्थ को समझने के लिए उसके मूल धात्वर्थ का अध्ययन आवश्यक है। इस दृष्टिकोण में धातु को केवल व्याकरणिक इकाई नहीं, बल्कि अर्थ का मूल स्रोत माना गया है।

इसी प्रकार कातन्त्र व्याकरण में धातुओं की व्याख्या अपेक्षाकृत सरल और व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत की गई है। यहाँ धात्वर्थ को अत्यधिक तकनीकी नियमों के बजाय भाषा के वास्तविक प्रयोग से जोड़ा गया है। इस परम्परा में धातु के अर्थ को समझाने के लिए उदाहरणों और प्रयोगों का सहारा लिया जाता है, जिससे भाषा-शिक्षण की प्रक्रिया अधिक सहज बन जाती है। चान्द्र व्याकरण में भी धात्वर्थ का विवेचन पाणिनीय प्रणाली से कुछ भिन्न दृष्टिकोण से किया गया है। इस परम्परा में धातुओं की व्याख्या करते समय अर्थ की बहुविधता तथा प्रयोगगत भिन्नताओं को स्वीकार किया गया है। अर्थात् एक ही धातु विभिन्न प्रसंगों में भिन्न-भिन्न अर्थ व्यक्त कर सकती है। इस प्रकार धात्वर्थ को स्थिर और निश्चित न मानकर एक गतिशील तथा संदर्भ-निर्भर तत्त्व माना गया है (किपार्स्की, 1969)।

अपाणिनीय परम्परा में भर्तृहरि का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके ग्रन्थ वाक्यपदीय में भाषा और अर्थ के सम्बन्ध पर गहन दार्शनिक चर्चा की गई है। भर्तृहरि के अनुसार शब्द और अर्थ का सम्बन्ध केवल व्याकरणिक नियमों का परिणाम नहीं है, बल्कि यह भाषा की समग्र अभिव्यक्ति से उत्पन्न होता है। उन्होंने स्फोट सिद्धान्त के माध्यम से यह प्रतिपादित किया कि अर्थ का बोध शब्दों के पृथक-पृथक उच्चारण से नहीं, बल्कि सम्पूर्ण वाक्य की समग्रता से होता है। इस दृष्टिकोण के कारण धात्वर्थ को भी व्यापक भाषिक सन्दर्भ में समझा जाता है। मीमांसा तथा न्याय दर्शन से प्रभावित अपाणिनीय विचारकों ने भी धात्वर्थ की व्याख्या में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मीमांसा परम्परा में शब्द और अर्थ के शाश्वत सम्बन्ध पर बल दिया गया है, जबकि न्याय परम्परा में अर्थ के निर्धारण में तर्क और ज्ञानमीमांसा का उपयोग किया गया है। इन दार्शनिक परम्पराओं के प्रभाव से अपाणिनीय व्याकरण में धात्वर्थ का अध्ययन केवल व्याकरणिक प्रक्रिया न रहकर दार्शनिक अन्वेषण का विषय बन जाता है। इस प्रकार स्पष्ट

होता है कि अपाणिनीय व्याकरण में धात्वर्थ की व्याख्या अपेक्षाकृत अधिक व्यापक और बहुआयामी है। यहाँ धातु के अर्थ को केवल सूत्रात्मक नियमों से निर्धारित न करके उसके प्रयोग, संदर्भ, दार्शनिक पृष्ठभूमि तथा भाषिक परम्परा के आधार पर समझा जाता है (बेहरा, 2016)। यही कारण है कि अपाणिनीय परम्परा संस्कृत व्याकरण के अर्थवैज्ञानिक अध्ययन को अधिक लचीला, व्याख्यात्मक और दार्शनिक गहराई प्रदान करती है।

6. पाणिनीय एवं अपाणिनीय मतों के दार्शनिक आधार

भारतीय व्याकरण परम्परा में धात्वर्थ की व्याख्या केवल भाषिक या व्याकरणिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह गहरे दार्शनिक आधारों पर भी आधारित है। पाणिनीय तथा अपाणिनीय दोनों परम्पराएँ भाषा, शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को समझने के लिए भिन्न-भिन्न दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं। इन दृष्टिकोणों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत व्याकरण केवल व्याकरणिक नियमों का संकलन नहीं है, बल्कि वह भारतीय दर्शन की व्यापक परम्परा से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। पाणिनीय परम्परा का दार्शनिक आधार मुख्यतः तार्किकता, नियमबद्धता तथा संरचनात्मक वैज्ञानिकता पर आधारित है। पाणिनि द्वारा रचित अष्टाध्यायी में भाषा के नियमों को अत्यन्त सूक्ष्म और व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया गया है। पाणिनीय प्रणाली में धातु को शब्दनिर्माण का मूल आधार माना गया है और प्रत्येक शब्द को धातु तथा प्रत्यय के संयोजन से उत्पन्न माना जाता है। इस प्रणाली का प्रमुख उद्देश्य भाषा की संरचना को नियमों के माध्यम से स्पष्ट करना है। इस प्रकार पाणिनीय व्याकरण में धात्वर्थ का निर्धारण मुख्यतः रूपात्मक और व्युत्पत्तिमूलक प्रक्रियाओं के माध्यम से किया जाता है। पाणिनीय परम्परा में शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को अपेक्षाकृत स्थिर तथा नियमबद्ध माना गया है। यहाँ व्याकरणिक सूत्रों के माध्यम से यह निर्धारित किया जाता है कि किसी धातु से किस प्रकार शब्दों का निर्माण होगा और उनका अर्थ किस प्रकार विकसित होगा। इस दृष्टिकोण में भाषा को एक वैज्ञानिक प्रणाली के रूप में देखा गया है, जिसमें प्रत्येक नियम का निश्चित कार्य और उद्देश्य होता है (बेहरा, 2015)।

इसके विपरीत, अपाणिनीय परम्परा में धात्वर्थ की व्याख्या अपेक्षाकृत अधिक दार्शनिक और व्याख्यात्मक दृष्टिकोण से की जाती है। अपाणिनीय मतों में मीमांसा, न्याय और व्याकरण-दर्शन जैसी परम्पराओं का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इन परम्पराओं में शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को केवल व्याकरणिक नियमों से नहीं, बल्कि संदर्भ, प्रयोग तथा दार्शनिक व्याख्या के माध्यम से समझने का प्रयास किया जाता है। उदाहरण के लिए, मीमांसा दर्शन में शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को शाश्वत माना गया है और यह माना जाता है कि शब्द अपने अर्थ को स्वाभाविक रूप से व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार न्याय दर्शन में शब्दार्थ की व्याख्या तर्क और ज्ञानमीमांसा के आधार पर की जाती है, जहाँ यह विचार किया जाता है कि शब्द किस प्रकार ज्ञान का माध्यम बनते हैं (पिंगलाचार्य 2008)।

अपाणिनीय परम्परा में भर्तृहरि का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके द्वारा प्रतिपादित स्फोट सिद्धान्त भाषा और अर्थ के सम्बन्ध को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण दार्शनिक आधार प्रदान करता है। भर्तृहरि के अनुसार शब्द का अर्थ उसके अक्षरों के पृथक-पृथक उच्चारण से नहीं, बल्कि सम्पूर्ण वाक्य या शब्द के एक साथ ग्रहण से प्रकट होता है। इस प्रकार अर्थ एक समग्र अनुभव के रूप में प्रकट होता है। यह दृष्टिकोण पाणिनीय परम्परा की नियमबद्ध और विश्लेषणात्मक पद्धति से भिन्न है, क्योंकि यहाँ भाषा को अधिक समग्र और दार्शनिक दृष्टि से समझा जाता है (हौबेन, 2009)।

पाणिनीय और अपाणिनीय दोनों परम्पराओं के दार्शनिक आधारों की तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि दोनों की कार्यप्रणाली भिन्न होने पर भी उनका उद्देश्य भाषा और अर्थ के सम्बन्ध को स्पष्ट करना ही है। पाणिनीय परम्परा जहाँ भाषा की संरचना और नियमों पर अधिक बल देती है, वहीं अपाणिनीय परम्परा अर्थ की व्याख्या, संदर्भ और दार्शनिक गहराई पर अधिक ध्यान केन्द्रित करती है। इस प्रकार इन दोनों दृष्टिकोणों का संयुक्त अध्ययन संस्कृत व्याकरण और भारतीय भाषाशास्त्र की व्यापक समझ प्रदान करता है तथा धात्वर्थ की प्रकृति को अधिक गहराई से स्पष्ट करता है।

7. धात्वर्थ की बहुविधता (अनेकार्थता)

भारतीय व्याकरण परम्परा में धातु को शब्दनिर्माण का मूलाधार माना गया है। संस्कृत भाषा की संरचना इस सिद्धान्त पर आधारित है कि अधिकांश शब्द किसी न किसी धातु से व्युत्पन्न होते हैं। धातु केवल क्रिया का संकेत नहीं करती, बल्कि उसके भीतर निहित मूल अर्थ (धात्वर्थ) भी विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होता है। इसी कारण संस्कृत व्याकरण में धातुओं की अनेकार्थता का सिद्धान्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। प्राचीन व्याकरणकारों ने स्पष्ट रूप से कहा है— "अनेकार्था हि धातवः", अर्थात् धातुएँ अनेक अर्थों को धारण करने की क्षमता रखती हैं। यह सिद्धान्त संस्कृत की अर्थ-समृद्धि तथा अभिव्यक्ति की व्यापकता को प्रकट करता है। पाणिनीय परम्परा में धात्वर्थ की बहुविधता का आधार मुख्यतः धातुपाठ और प्रत्यय-प्रक्रिया है। पाणिनि के अनुसार धातु का एक मूल अर्थ होता है, किन्तु विभिन्न प्रत्ययों, उपसर्गों तथा प्रयोगों के माध्यम से वही धातु अनेक अर्थों में प्रयुक्त हो सकती है। उदाहरण के लिए "गम्" धातु का सामान्य अर्थ 'गमन करना' है, किन्तु उपसर्गों के योग से इसके अर्थ में परिवर्तन हो जाता है—जैसे आगच्छति (आना), निगच्छति (नीचे जाना), उपगच्छति (निकट जाना) आदि। इस प्रकार उपसर्ग, प्रत्यय तथा वाक्य-प्रसंग धातु के मूल अर्थ को विस्तृत या परिवर्तित कर देते हैं। पाणिनीय प्रणाली इस बहुविधता को नियमबद्ध रूप से समझाती है, जिससे भाषा की संरचनात्मक स्पष्टता बनी रहती है (शास्त्री, 1972)। अपाणिनीय परम्पराओं में धात्वर्थ की बहुविधता को अधिक व्यापक और लचीले रूप में स्वीकार किया गया है। मीमांसा तथा न्याय परम्परा के विद्वानों ने यह प्रतिपादित किया कि किसी धातु का अर्थ केवल उसके व्याकरणिक रूप से निर्धारित नहीं होता, बल्कि प्रसंग वक्ता का अभिप्राय तथा प्रयोग की स्थिति भी उसके अर्थ को निर्धारित करते हैं। इस दृष्टिकोण में धातु का अर्थ स्थिर न होकर परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित हो सकता है। उदाहरणतः "स्था" धातु का अर्थ 'खड़ा होना', 'स्थित होना', 'स्थिर रहना' अथवा 'स्थापित करना' आदि भिन्न-भिन्न सन्दर्भों में प्रकट हो सकता है (शार्फ, 2011)।

धात्वर्थ की बहुविधता का एक महत्त्वपूर्ण कारण उपसर्गों का प्रयोग भी है। संस्कृत में उपसर्ग धातु के साथ जुड़कर उसके अर्थ को विस्तृत, परिवर्तित या विशिष्ट बना देते हैं। जैसे "भू" धातु का मूल अर्थ 'होना' या 'अस्तित्व में आना' है, किन्तु सम्भवति, प्रभवति, अभवति आदि रूपों में यह भिन्न अर्थ ग्रहण करती है। इसी प्रकार स्वर या व्यंजन परिवर्तन, प्रत्ययों का योग, तथा समास आदि प्रक्रियाएँ भी धातु के अर्थ में विविधता उत्पन्न करती हैं। संस्कृत साहित्य और काव्यशास्त्र में भी धात्वर्थ की अनेकार्थता का विशेष महत्त्व है। कवि और लेखक धातुओं के बहुविध अर्थों का उपयोग करके भाषा में सौन्दर्य, सूक्ष्मता और व्यंजना का सृजन करते हैं (कार्डोना, 2000)। इसी कारण संस्कृत में शब्दों और धातुओं की अर्थ-सम्पन्नता अत्यन्त समृद्ध दिखाई देती है। यह बहुविधता केवल भाषिक विशेषता ही नहीं, बल्कि भारतीय चिंतन परम्परा में भाषा की दार्शनिक गहराई को भी प्रकट करती है।

8. पाणिनीय एवं अपाणिनीय धात्वर्थ का तुलनात्मक विश्लेषण

भारतीय व्याकरण परम्परा में धातु को भाषा की मूल इकाई माना गया है, क्योंकि संस्कृत में अधिकांश शब्दों की उत्पत्ति धातुओं से ही होती है। धातु केवल शब्दनिर्माण का आधार ही नहीं है, बल्कि उसके भीतर निहित धात्वर्थ (क्रियार्थ या मूल अर्थ) सम्पूर्ण वाक्य के अर्थ-निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पाणिनीय तथा अपाणिनीय व्याकरणिक परम्पराएँ दोनों ही धातु के महत्व को स्वीकार करती हैं, किन्तु धात्वर्थ की व्याख्या, उसके प्रयोग तथा अर्थ-निर्धारण के तरीकों में दोनों के दृष्टिकोणों में उल्लेखनीय भिन्नताएँ दिखाई देती हैं। इसी कारण इन दोनों मतों का तुलनात्मक अध्ययन संस्कृत शब्दार्थ-विज्ञान की गहन समझ प्रदान करता है (स्टाल, 2005)। पाणिनीय परम्परा में धात्वर्थ का अध्ययन अत्यन्त व्यवस्थित एवं नियमबद्ध ढंग से किया गया है। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में धातुओं को व्याकरणिक नियमों के माध्यम से व्यवस्थित किया गया है तथा प्रत्येक धातु के साथ उसका मूल अर्थ भी निर्दिष्ट किया गया है। पाणिनीय प्रणाली के अनुसार धातु का अर्थ मुख्यतः क्रिया या प्रक्रिया को व्यक्त करता है। उदाहरण के लिए— गम् धातु का अर्थ "गमन करना", भू धातु का अर्थ "होना" तथा पा धातु का अर्थ "पीना" माना जाता है। पाणिनीय व्याकरण में धातुओं को विभिन्न गणों में विभाजित किया गया है, जिससे उनकी रूप-प्रक्रिया तथा प्रयोग को समझना सरल हो जाता है। इस प्रणाली की विशेषता यह है कि इसमें धातु से बनने वाले शब्दों की व्युत्पत्ति एक निश्चित नियम-प्रणाली के अन्तर्गत की जाती है (बोडास, 2024)। प्रत्यय, उपसर्ग तथा संधि आदि के माध्यम से धातु के अर्थ का विस्तार या परिवर्तन होता है, किन्तु मूल धात्वर्थ की संरचना प्रायः स्थिर रहती है।

इसके विपरीत अपाणिनीय परम्परा में धात्वर्थ की व्याख्या अपेक्षाकृत अधिक लचीली और संदर्भ-आधारित मानी जाती है। अपाणिनीय परम्पराओं में कात्यायन, पतञ्जलि, भर्तृहरि, चन्द्रगोमिन तथा अन्य व्याकरणविदों के विचार सम्मिलित हैं, जिन्होंने पाणिनीय नियमों की व्याख्या, संशोधन तथा विस्तार प्रस्तुत किया। इन परम्पराओं में धातु के अर्थ को केवल व्याकरणिक नियमों तक सीमित न रखकर उसके दार्शनिक और प्रासंगिक आयामों को भी महत्व दिया गया है। उदाहरण के लिए भर्तृहरि ने अपने ग्रन्थ 'वाक्यपदीय' में भाषा और अर्थ के सम्बन्ध को समग्र रूप में समझाने का प्रयास किया तथा "स्फोट" सिद्धान्त के माध्यम से यह प्रतिपादित किया कि शब्द अथवा वाक्य का अर्थ एक समग्र अनुभूति के रूप में प्रकट होता है। इस दृष्टिकोण में धातु का अर्थ केवल उसके शब्दकोशीय अर्थ तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उसके प्रयोग, प्रसंग तथा वक्ता की अभिप्रायना के अनुसार परिवर्तित हो सकता है (राजपोपत, 2022)।

पाणिनीय और अपाणिनीय मतों के बीच एक महत्वपूर्ण अन्तर अर्थ-निर्धारण की पद्धति में देखा जाता है। पाणिनीय प्रणाली मुख्यतः रूपात्मक और संरचनात्मक विश्लेषण पर आधारित है। इसमें धातु, प्रत्यय और उपसर्ग के संयोजन से उत्पन्न शब्दों के अर्थ को व्याकरणिक नियमों के आधार पर निर्धारित किया जाता है। उदाहरणतः उपसर्गों के प्रयोग से धातु के अर्थ में विशेष परिवर्तन उत्पन्न होता है—जैसे गम् धातु के साथ "सम्", "प्र", "वि" आदि उपसर्गों के जुड़ने से क्रमशः संगच्छति, प्रगच्छति, विगच्छति जैसे भिन्न अर्थ उत्पन्न होते हैं (कार्डोना, 2000)। इसके विपरीत अपाणिनीय दृष्टिकोण में अर्थ-निर्धारण की प्रक्रिया अधिक संदर्भात्मक और दार्शनिक होती है। यहाँ धातु के अर्थ को केवल व्याकरणिक संरचना के आधार पर नहीं, बल्कि भाषिक प्रयोग, सांस्कृतिक संदर्भ और दार्शनिक व्याख्या के आधार पर समझा जाता है। मीमांसा और न्याय परम्पराओं में यह विचार

प्रमुख है कि शब्द और अर्थ का सम्बन्ध केवल नियमों से निर्धारित नहीं होता, बल्कि वह संदर्भ, अभिप्राय तथा व्यावहारिक प्रयोग से भी प्रभावित होता है। इस कारण अपाणिनीय व्याख्या में धातुओं की अनेकार्थता को अधिक महत्व दिया गया है।

तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो पाणिनीय परम्परा धात्वर्थ के अध्ययन में सुस्पष्टता, संक्षिप्तता और तार्किकता प्रदान करती है। इसकी नियम-आधारित संरचना भाषा के वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती है। दूसरी ओर अपाणिनीय परम्परा धात्वर्थ के अध्ययन में व्याख्यात्मक समृद्धि और दार्शनिक गहराई प्रस्तुत करती है। यह भाषा के प्रयोगगत और सांस्कृतिक पक्षों को भी महत्व देती है, जिससे अर्थ की बहुआयामी समझ विकसित होती है।

9. धात्वर्थ-परिवर्तन के कारण एवं प्रभाव

संस्कृत व्याकरण परम्परा में धातु (धातवः) को शब्दनिर्माण का मूल आधार माना गया है। पाणिनीय परम्परा में धातु से ही विविध रूपों तथा अर्थों का विकास होता है और प्रत्यय, उपसर्ग, समास आदि प्रक्रियाओं के माध्यम से भाषा की संरचना निर्मित होती है। परन्तु भाषा एक स्थिर तंत्र नहीं है; समय, प्रयोग तथा प्रसंग के अनुसार धातुओं के अर्थों में परिवर्तन भी होता रहता है। इस प्रकार धात्वर्थ-परिवर्तन संस्कृत व्याकरण के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण विषय है। पाणिनीय तथा अपाणिनीय दोनों परम्पराओं में यह स्वीकार किया गया है कि धातुओं का अर्थ सदैव एकरूप नहीं रहता, बल्कि विभिन्न कारणों से उसमें परिवर्तन, विस्तार या संकुचन होता है (त्रिपाठी, 2018)। सबसे प्रमुख कारण उपसर्गों का प्रयोग है। संस्कृत में धातु के साथ विभिन्न उपसर्गों के जुड़ने से उसके मूल अर्थ में परिवर्तन या विस्तार हो जाता है। उदाहरणार्थ “गम्” धातु का सामान्य अर्थ “जाना” है, किन्तु “सम् + गम्” से “संगम” (एकत्र होना), “अधि + गम्” से “अधिगमन” (प्राप्त करना), तथा “उप + गम्” से “उपगमन” (निकट जाना) जैसे अर्थ उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार उपसर्ग धातु के मूल अर्थ को परिवर्तित कर नये अर्थों की सृष्टि करते हैं। पाणिनीय व्याकरण में उपसर्गों को धातु के अर्थविस्तार का महत्वपूर्ण साधन माना गया है, जबकि अपाणिनीय परम्पराएँ इनके प्रयोग में अधिक व्यावहारिक और संदर्भगत लचीलापन स्वीकार करती हैं।

दूसरा महत्वपूर्ण कारण प्रत्ययों का प्रभाव है। जब किसी धातु के साथ कृत्, तद्धित या अन्य प्रत्यय जोड़े जाते हैं, तो उससे उत्पन्न शब्द का अर्थ मूल धातु से भिन्न या विस्तृत हो सकता है। उदाहरण के लिए “कृ” धातु का मूल अर्थ “करना” है, किन्तु “कर्ता”, “कार्य”, “करण”, “कृत्य” आदि रूपों में इसका अर्थ विभिन्न प्रसंगों में अलग-अलग रूप धारण कर लेता है। प्रत्यय धातु के अर्थ को विशेष दिशा प्रदान करते हैं और भाषा में अर्थ की विविधता उत्पन्न करते हैं (शास्त्री, 2014)। तीसरा कारण प्रसंग या सन्दर्भ है। किसी धातु का अर्थ उसके प्रयोग के सन्दर्भ के अनुसार बदल सकता है। संस्कृत साहित्य में अनेक धातुएँ ऐसी हैं जिनका अर्थ प्रसंगानुसार भिन्न-भिन्न होता है। उदाहरणार्थ “स्था” धातु का सामान्य अर्थ “खड़ा होना” या “स्थित होना” है, किन्तु विभिन्न वाक्यों में यह “रहना”, “स्थापित होना” या “अवस्थित होना” जैसे अर्थ भी व्यक्त कर सकती है। अपाणिनीय परम्पराएँ विशेष रूप से इस संदर्भगत लचीलेपन पर बल देती हैं और मानती हैं कि शब्द का अर्थ केवल व्याकरणिक नियमों से नहीं, बल्कि प्रयोग और आशय से भी निर्धारित होता है।

चौथा कारण भाषिक एवं ध्वन्यात्मक परिवर्तन है। कभी-कभी ध्वनि या रूप में परिवर्तन के कारण भी धातु के अर्थ में परिवर्तन देखने को मिलता है। स्वर या व्यंजन में सूक्ष्म परिवर्तन, संधि-प्रक्रिया या ध्वन्यात्मक विकास के कारण धातु का प्रयोग नये अर्थों

के साथ होने लगता है। यह परिवर्तन विशेषतः दीर्घकालीन भाषिक विकास के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। पाँचवाँ कारण अनेकार्थता है। संस्कृत व्याकरण में यह प्रसिद्ध उक्ति है—"अनेकार्था हि धातवः", अर्थात् धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं। एक ही धातु विभिन्न संदर्भों में अनेक अर्थ व्यक्त कर सकती है। उदाहरण के लिए "दा" धातु का अर्थ "देना" है, परन्तु विभिन्न प्रयोगों में यह "दान करना", "प्रदान करना", "त्याग करना" आदि अर्थों को भी व्यक्त कर सकती है। इस प्रकार अनेकार्थता धात्वर्थ-परिवर्तन का एक स्वाभाविक रूप है (चोम्स्की, 2014)।

धात्वर्थ-परिवर्तन के प्रभाव भी अत्यंत व्यापक हैं। सबसे पहले, यह भाषा की अभिव्यक्तिगत क्षमता को बढ़ाता है। जब एक ही धातु से अनेक अर्थ उत्पन्न होते हैं, तो भाषा अधिक समृद्ध और लचीली बन जाती है। इससे साहित्य, काव्य और दर्शन में सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति संभव होती है। दूसरा प्रभाव शब्दनिर्माण की प्रक्रिया पर पड़ता है। धातु के अर्थ में परिवर्तन से नये शब्दों का निर्माण होता है और भाषा का शब्दभंडार विस्तृत होता है। संस्कृत में अनेक संज्ञाएँ, विशेषण और क्रियाएँ धातुओं के अर्थविस्तार के परिणामस्वरूप विकसित हुई हैं (मुजफ्फर, 2016)।

तीसरा प्रभाव दार्शनिक और व्याख्यात्मक परम्पराओं पर पड़ता है। मीमांसा, न्याय और वेदान्त जैसी दार्शनिक परम्पराओं में शब्द और अर्थ के संबंध का विश्लेषण अत्यंत महत्वपूर्ण है। धात्वर्थ के परिवर्तन से शास्त्रीय ग्रंथों की व्याख्या में विविध दृष्टिकोण उत्पन्न होते हैं, जिससे भाषिक तथा दार्शनिक विमर्श समृद्ध होता है।

10. निष्कर्ष

भारतीय व्याकरण परम्परा में धातु (धातवः) को भाषा की मूल इकाई माना गया है, जिसके आधार पर शब्द-निर्माण, अर्थ-व्यंजना तथा वाक्य-रचना की प्रक्रिया संचालित होती है। प्रस्तुत अध्ययन में पाणिनीय एवं अपाणिनीय परम्पराओं में धात्वर्थ की अवधारणा का तुलनात्मक विवेचन करने से यह स्पष्ट होता है कि दोनों परम्पराएँ संस्कृत भाषा की संरचना और अर्थ-व्यवस्था को समझने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं। पाणिनीय प्रणाली, जो मुख्यतः पाणिनि की "अष्टाध्यायी" पर आधारित है, धातुओं के अर्थ-निर्धारण में अत्यधिक वैज्ञानिक, सूत्रात्मक और नियमबद्ध पद्धति को अपनाती है। इस प्रणाली में धातु, प्रत्यय, उपसर्ग तथा समास आदि के माध्यम से शब्द-निर्माण की एक सुव्यवस्थित प्रक्रिया विकसित की गई है, जिससे भाषा की संरचना स्पष्ट एवं तार्किक रूप में सामने आती है।

इसके विपरीत, अपाणिनीय परम्परा में धात्वर्थ की व्याख्या अपेक्षाकृत अधिक लचीली और व्याख्यात्मक रूप में मिलती है। कात्यायन, पतञ्जलि, भर्तृहरि तथा अन्य व्याकरणाचार्यों ने भाषा के अर्थ-विवेचन में प्रसंग, प्रयोग और दार्शनिक दृष्टिकोण को विशेष महत्व दिया है। विशेषतः भर्तृहरि के 'स्फोटवाद' तथा मीमांसा और न्याय परम्पराओं के सिद्धान्तों ने शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को अधिक व्यापक दार्शनिक आधार प्रदान किया है। इस दृष्टि से अपाणिनीय परम्परा भाषा की व्याख्या को केवल व्याकरणिक नियमों तक सीमित न रखकर उसे दार्शनिक, सांस्कृतिक तथा व्यावहारिक संदर्भों से भी जोड़ती है।

तुलनात्मक अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि पाणिनीय प्रणाली की नियमबद्धता, संक्षिप्तता और संरचनात्मक स्पष्टता भाषा के औपचारिक अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी है, जबकि अपाणिनीय दृष्टिकोण की व्याख्यात्मक लचीलापन और दार्शनिक

गहराई भाषा के अर्थ-आधारित विश्लेषण को समृद्ध बनाती है। दोनों परम्पराएँ परस्पर विरोधी न होकर एक-दूसरे की पूरक प्रतीत होती हैं।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारतीय व्याकरण परम्परा में धात्वर्थ का अध्ययन केवल भाषिक विश्लेषण का विषय नहीं है, बल्कि यह भारतीय ज्ञान-परम्परा की गहन दार्शनिक और सांस्कृतिक चेतना का भी द्योतक है। पाणिनीय और अपाणिनीय मतों का समन्वित अध्ययन संस्कृत भाषा की संरचना, अर्थ-व्यवस्था और बौद्धिक परम्परा को अधिक समग्र रूप से समझने में सहायक सिद्ध होता है।

संदर्भ

1. कोम्पेला, बी. (2019)। पाणिनि की अष्टाध्यायी में गणितीय संरचनाएँ।
2. स्टाल, एफ.(2005). यूक्लिड यूरोप के लिए क्या है, पाणिनि भारत के लिए हैं - या वे हैं? राष्ट्रीय उन्नत अध्ययन संस्थान. आईएसबीएन 81-87663-57-एक्स.
3. बोडास, एन। (2024, 21 फरवरी)। पीहडी थीसिस पर एक आलोचना - पाणिनि में हम भरोसा करते हैं। भारतीय विद्वत परिषद सूची।
4. राजपोपत, आर. (2022)। पाणिनि में हम भरोसा करते हैं: अष्टाध्यायी में नियम संघर्ष समाधान के लिए एल्गोरिथ्म की खोज (डॉक्टरेट शोध प्रबंध, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय)। हततपस://दओइ.ओरग/10.17863/चअम.80099
5. कार्डोना, जी.(2000). पुस्तक समीक्षा: पाणिनि की व्याकरणिक। जर्नल ऑफ़ द अमेरिकन ओरिएंटल सोसाइटी, 120(3), 464-465। जेएसटीओआर 606023.
6. डी'ओटावी, जी. (2013)। पाणिनी एट ले मेमोइरे [पाणिनी और संस्मरण]। एरेना रोमानिस्टिका, 12, 164-193।
7. हौबेन, ज.ई.एम. (2009). पाणिनि का व्याकरण और उसका कम्प्यूटरीकरण: एक निर्माण व्याकरण दृष्टिकोण. संस्कृत कम्प्यूटेशनल भाषाविज्ञान में (पृष्ठ 6–25). स्प्रिंगर.
8. पिंगलाचार्य. (2008). पाणिनीय शिक्षा (ए. के. बंद्योपाध्याय, सं.). (पुनर्मुद्रण). कोलकाता: सदेश.
9. शास्त्री, के. सी. (1972). पाणिनीय और चंद्र प्रणालियों में संस्कृत व्याकरण में बंगाल का योगदान (प्रथम संस्करण). कोलकाता: संस्कृत महाविद्यालय.
10. दास, के. (2012)। संस्कृत व्याकरण ओ भाषा प्रसंग। कोलकाता: सदेश.
11. शार्फ, पी. (2011)। पाणिनीय व्युत्पन्न प्रक्रिया के अर्थगत आधार पर: कुंभकार की व्युत्पत्ति। जर्नल ऑफ द अमेरिकन ओरिएंटल सोसाइटी, 131 (1), 39-72।

12. त्रिपाठी, बी. (2018)। व्याकरणशास्त्रेतिहास: संस्कृत व्याकरण का एक संक्षिप्त इतिहास (नया संस्करण, चौखम्बा सुरभारती ग्रंथमाला 43)। वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन।

13. शास्त्री, के.एल.वी., और शास्त्री, एल.ए. (2014)। धातुरूप मंजरी: संस्कृत क्रियाओं का एक आसान पाठ (8वां संस्करण)। कल्पथी; पालघाट: आर.एस. वाध्यार एंड संस।

14. भाटे, एस., और काक, एस. (1991)। पाणिनीय व्याकरण और कंप्यूटर विज्ञान। भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट के इतिहास, 72(1/4), 79–94।

15. मुजफ्फर, एस., बेहरा, पी., और झा, जी. एन. (2016)। अंग्रेजी-उर्दू मशीन अनुवाद में केस मार्कर त्रुटियों का विश्लेषण करने के लिए एक पाणिनीय ढांचा। प्रोसीडिया कंप्यूटर साइंस, 96, 502–510।

16. चोम्स्की, एन.(2014)। वाक्यविन्यास के सिद्धांत के पहलू (खंड 11)। एमआईटी प्रेस।

17. चोम्स्की, एन.(1993)। सरकार और बंधन पर व्याख्यान: पीसा व्याख्यान (सं. 9)। वाल्टर डी ग्रुइटर।

18. किपार्स्की, पी., और स्टाल, ज. एफ. (1969)। पाणिनि में वाक्यविन्यास और अर्थ संबंधी संबंध। भाषा की नींव, 5, 83-117।

19. बेहरा, पी., सिंह, आर., और झा, जी. एन. (2016)। अनुवाद (ईआईएलएमटी) अंग्रेजी-ओडिया मशीन-सहायता प्राप्त अनुवाद उपकरण का मूल्यांकन। वाइल्डर: एलआरईसी।

20. बेहरा, पी. (2015)। ओडिया भागों के भाषण टैगिंग कॉर्पोरा: सांख्यिकीय मॉडल की उपयुक्तता (एम. फिल. शोध प्रबंध)। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत।